



विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ८ • वर्ष ६ • बुद्धवर्ष २५२२ • श्रावण पूर्णिमा [शक] • दि. १८-८-१९७८ • अंक २

धर्मपद

भगवान गौतम बुद्ध के जीवनकाल की एक घटना -

उन दिनों भगवान मगध देश की राजधानी राजगिरि के 'गृद्ध-कूट पर्वत' पर विहार कर रहे थे।

उन्हीं दिनों राजगिरि में सर्पिणी नदी के तट पर परिव्राजकों के एक विहार में तत्कालीन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध परिव्राजक जैसे अन्नभार, वर-घर, सकुलदायी आदि ठहरे हुए थे।

एक दिन सायंकाल प्रतिसंल्लीन ध्यान से उठकर भगवान सर्पिणी नदी के तट पर बसे हुए उस परिव्राजकाराम विहार में गए। वहां बिछे हुए आसन पर आसीन होकर धर्म-चर्चा करते हुए भगवान ने चार धर्मपदों की व्याख्या की :-

अलोभ याने रागविहीनता का धर्मपद।

अक्रोध याने द्वेषविहीनता का धर्मपद।

सम्यक् स्मृति याने जागरूकता का धर्मपद।

सम्यक् समाधि याने शुद्ध चित्त की समाधानता का धर्मपद।

आओ, भगवान द्वारा निर्दिष्ट, उपदिष्ट इन चार धर्मपदों को विस्तार से समझें।

यह चारों ही धर्म के ऐसे पद हैं, ऐसे चरण हैं जो कि सनातन हैं, पुरातन हैं, दीर्घकालिक हैं। कोई शुद्ध, बुद्ध, मुक्त महापुरुष इनकी रचना नहीं करता, इनका निर्माण नहीं करता। लोग इन्हें धारण करना भूल जाते हैं तो वह स्वयं धारण करके लोगों को धारण करना सिखाता है। भगवान गौतमबुद्ध के पूर्व भी यह धर्म थे, उनके पश्चात् भी रहे और रहेंगे। इसी माने में सनातन हैं, पुरातन हैं।

ये चारों धर्म ऐसे हैं जो अग्र हैं, आर्य हैं, अग्रवंशगत हैं, आर्य-वंशगत हैं। याने अग्र-आर्यवंश के लोग इनका पालन करते रहे हैं, इन्हें धारण करते रहे हैं। याने इनका पालन करके, इनको धारण करके चिरकाल से लोग आर्य बनते आए हैं, अग्र बनते आए हैं। इन पर किसी जातिविशेष या संप्रदायविशेष का न एकाधिकार रहा है, न रहेगा। अग्रवंश, आर्यवंश जाति व संप्रदाय पर आधारित नहीं होता। धर्म धारण करके जो आर्य बन जाय, अग्र बन जाय वही आर्य-वंशी, वहीं अग्रवंशी। धर्म पर किसी की बपौती नहीं होती। किसी

धम्म वाणी

अनमिज्झतु विहरेय्य अव्यापन्नेन चेतसा।

सतो एकगचित्तस्स अज्झतं सुसमाहितं॥

अंगुत्तरनिकाय-४-३-९ धम्मपद सुत्त.

लोभरहित चित्त से विहार करें।

क्रोधरहित चित्त से विहार करें।

स्मृतिमान चित्त से विहार करें।

अध्यात्म में सुसमाहित होकर एकाग्रचित्त से विहार करें।

का एक छत्र प्रमुख नहीं होता। धर्म सबका है, सब के लिए है। धर्म सार्वजनीन है, सार्वभौमिक है, सार्वकालिक है, सर्वव्यापी है, सर्वसुलभ है- इसीलिए सनातन है, पुरातन है, दीर्घकालिक है।

वीतराग, वीतद्वेष, सतत् जागरूक और समाधिरुथ बनने के लिए किसी संप्रदाय में दीक्षित होना आवश्यक नहीं है। भेड़, बकरी की तरह किसी बाड़े में बंधना अनिवार्य नहीं है।

यह चारों धर्मपद अग्र हैं, सदा ही शुद्ध हैं, पावन हैं, पवित्र हैं, निर्मल हैं। क्योंकि संकीर्ण नहीं हैं।

भगवान कहते हैं कि यह सभी असंकीर्ण हैं। न कभी संकीर्ण हुए, न हैं, न होंगे।

संकीर्ण नहीं हैं इसीलिए शुद्ध हैं। संकीर्ण होते तो मलीन हो जाते, निर्मलता खो बैठते। संकीर्ण होते तो विशालता खो बैठते, व्यापकता खो बैठते, संकुचित हो जाते, क्षुद्र हो जाते; क्योंकि किसी जाति, संप्रदाय अथवा मतवाद के पहिए की गुलामी से जुड़ जाते।

सत्त्वमुच जब-जब धर्म किसी जाति, वर्ग, गोत्र, संप्रदाय व मतवाद से सम्मिश्रित हो जाता है तब-तब संकीर्ण ही हो जाता है, मलीन ही हो जाता है। अग्र न रह कर अनग्र बन जाता है। आर्य न रह कर अनार्य बन जाता है। ऐसी अवस्था में धर्म धर्म नहीं रहता, धर्मपद धर्मपद नहीं रहते। सांप्रदायिक और दार्शनिक मत मतांतरो का बुद्धिघकिलोल प्रमुख हो जाता है, धारण करना गौण हो जाता है। धारण करें तो ही धर्म है अन्यथा कोरी बात ही बात है।

धर्म को जो धारण करे, धर्मपदों पर जो चले वही मुक्त हो जाय। धर्म के क्षेत्र में केवल दो ही जाति हैं, दो ही कुल हैं, दो ही गोत्र हैं—अनार्य और आर्य। धर्मपदों पर कदम-कदम चलते-चलते चेतो-विमुक्ति की अवस्था पर पहुंचता है। चित्त राग द्वेष विमुक्त हो जाता है। चेतो-विमुक्ति की अवस्था ही प्रज्ञा-विमुक्ति की ओर ले जाती है। प्रज्ञा द्वारा सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान का अभ्यास करते-करते एक अवस्था आती है जब कि साधक/पथिक ऐन्द्रिय अनुभूतियों का साक्षात्कार करता हुआ इंद्रियातीत अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है। नित्य, मुक्त, निर्वाण अवस्था का, अमृत अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है। इसे ही “गोत्र-भू” कहते हैं। गोत्र बदल जाता है। अनार्य आर्य गोत्र में जन्म ले लेता है। कोई भी अनार्य हो, आर्य बन ही जाता है। योनिज जाति से कोई आर्य नहीं होता, कोई अग्र नहीं होता। धर्म धारण करके ही आर्य बनता है, अग्र बनता है। ऐसा व्यक्ति बौद्ध हो, जैन हो, हिन्दू हो या अन्य हो, ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण हो, शूद्र हो या अन्य हो, काला हो, गोरा हो या अन्य किसी वर्ण का हो, कोई अंतर नहीं पड़ता। धर्म कोई मेदभाव नहीं करता, क्योंकि धर्म संकीर्ण नहीं होता। मेल-मिश्रित, दूषित नहीं होता। हर किसी को आर्य बना ही देता है।

कोई व्यक्ति इन धर्मपदों में प्रतिष्ठित न हो, फिर भी धर्म के क्षेत्र में पूज्य प्रतिष्ठित होना चाहे तो यह शक्य नहीं, संभव नहीं।

भगवान कहते हैं कि ऐसा शुद्ध असंकीर्ण धर्म, ऐसे शुद्ध असंकीर्ण धर्मपद सभी समझदार श्रमणों और ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृत समर्थित होते हैं।

सही माने में श्रमण अथवा ब्राह्मण वही कहलायेगा जो धर्म धारण करके धर्मभूत हो गया है, ब्रह्मभूत हो गया है।

शुद्ध असंकीर्ण धर्म का कोई विरोध नहीं कर सकता। कोई नासमझ ऐसा करता है तो मुंह की खाता है, अपनी ही हानि करता है। धर्महीन, धर्मविरोधी व्यक्ति उसके लिए पूज्य बन जाते हैं। उनके प्रभाव में आकर वह स्वयं धर्महीन, धर्मविरोधी बन जाता है।

कोई व्यक्ति वीतरागता का विरोध करे तो स्वयं राग-रंजित ही होगा, लोभ-लुब्ध ही होगा। परिणामतः अपना अनिष्ट ही करेगा।

कोई व्यक्ति वीतद्वेषता का विरोध करेगा तो स्वयं द्वेष-दूषित ही होगा, क्रोध-कुपित ही होगा। परिणामतः अपना अनिष्ट ही करेगा।

कोई व्यक्ति सम्यक् स्मृति का, जागरूकता का विरोध करेगा तो स्वयं स्मृतिभ्रष्ट ही होगा, अनवधान ही होगा, परिणामतः अपना अनिष्ट ही करेगा।

कोई व्यक्ति सम्यक् समाधि का विरोध करेगा तो स्वयं समाधि-विहीन ही होगा, चित्तभ्रांत, चित्त-विक्षिप्त ही होगा, परिणामतः अपना अनिष्ट ही करेगा।

धर्म का सार्वजनीन, शुद्ध, असंकीर्ण स्वरूप सर्वमान्य होता है। इसका विरोध कोई समझदार व्यक्ति नहीं करता; चाहे वह किसी संप्रदाय का हो, किसी जाति-कुल का हो, किसी मत-मान्यता का हो।

भगवान ने कहा, “उक्कला वस्स मिञ्जा” आदि अहेतुकवादी, अक्रियावादी और कर्म तथा कर्मफल को न मानने वाले लोकायतवादी नास्तिक भी इन धर्मपदों का विरोध न कर पाए।

कैसे कर पाते? धर्म तो प्रत्यक्ष फलदायी है। अधर्म भी प्रत्यक्ष फलदायी है। जब जब कोई व्यक्ति राग या द्वेष में डूबता है, स्मृति-विभ्रम हो जाता है, समाधानता-विहीन हो जाता है, तब-तब आकुल-व्याकुल ही होता है। अधर्म का यह फल प्रत्यक्ष है, इसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार जब-जब कोई व्यक्ति राग-मुक्त, द्वेष-मुक्त होता है; स्मृति-सजग, समाधिस्थ होता है तो दुःख-मुक्त ही होता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

कुदरत की इस सच्चाई को भला कौन छुटला सकता है? इसलिए यह लोकायत नास्तिक भी इन धर्मपदों का विरोध करते हुए भय खाते थे। लोगों की निंदा, कोप और उपालंब का भय। किसी समझदार श्रमण या ब्राह्मण के विरोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

धन्य है धर्म! धन्य हैं धर्मपद! धन्य है इनकी सार्वभौमिकता! धन्य है इनकी सार्वजनीनता! धन्य है इनकी सनातनता!

आओ, इन्हें धारण करें, इनका लाभ उठाएं और अपना मंगल-कल्याण साधें!

कल्याण मित्र

स. ना. गो

सामूहिक साधना

दैनिक साधना को परिपुष्ट करने के लिए सप्ताह में कम से कम एक बार साधकों को सामूहिक साधना में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिए। इससे वातावरण और साथी साधकों की साधना से सबको बल प्राप्त होता है। इसके लिए आवश्यक है कि स्थानीय साधक आपस में मिलकर अपने क्षेत्र में सुविधानुसार कोई एक स्थान व समय निश्चित कर लें और वहां नियमित रूप से कम से कम एक घंटे सामूहिक साधना करें। कई स्थानों के साधक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं और सामूहिक साधना कर रहे हैं। उनके इस सराहनीय सत्प्रयास में आप भी हाथ बटाकर लाभ उठा सकते हैं। यथा :-

१) हैदराबाद : स्थान— विपश्यना साधना कुटीर,

टाप फ्लोर, राजधानी होटल के बगल का बिल्डिंग, सिडियम्बर बाजार, हैदराबाद-५०० ०१२.

समय— सुबह ७ से ८ बजे तक, प्रति रविवार।

संपर्क करें— श्रीमती द्रौपदीदेवी एवं श्री पूरनमल अग्रवाल,

फोन नं. ४१३८६, कार्या. ५७५७१.

२) बम्बई : संपर्क— श्री दीपचन्द शाह,

एवं स्थान— बी-३५, दलाश बिल्डिंग, ज्ञान मंदिर रोड, ज्ञान मंदिर के सामने, दादर (प.)

बम्बई-४०० ०२८.

समय— अपरान्ह ४ से ५ बजे तक, प्रतिदिन।

साधकों के उद्गार

न्यूजीलैंड निवासी प्लंबर का काम करने वाला साधक रिचर्ड जोन स्ट्रासी लिखता है, “साधना से मेरा गांजे का व्यसन तो छूट गया है पर एल. एस. डी. की कामना अब भी रहती है तथापि मैंने विपश्यना के बाद उसका उपयोग नहीं किया है। मेरी द्वेष की वृत्ति पहले से अधिक सूक्ष्म हो गई है। सहनशक्ति बढ़ी है।”



न्यूजीलैंड का साधक पीटर वाघ, जिसने कि मई १९७४ से अब तक लगभग बीस शिविरों में भाग लिया है, लिखता है, “पहले नशे पते करता था, अब विपश्यना के प्रभाव से बिल्कुल छूट गए हैं। जीवन के हर क्षेत्र में सुधार हुए हैं। अपने तनावों के प्रति जागरूक रहने का स्वभाव बढ़ा है। झुंझलाहट आती है तो देर तक ठिकती नहीं।”



न्यू जर्सी, अमेरिका का साधक टैकनीसियन रोनाल्ड योसेव, जो कि १९७३ में आरंभ करके अब तक कुल दो दर्जन शिविरों में भाग ले चुका है और नियमित साधना करता है, लिखता है, “पहले मांग, चरस, गांजा, अफीम, एलएसडी आदि सभी प्रकार के नशों का आदी था। विपश्यना के प्रभाव से अब उनसे पूर्णतया मुक्त हूँ। जीवन-व्यवहार में शांति आयी है। समस्याओं का सामना आसानी से कर पाता हूँ। परिवार के लोगों के साथ बिगड़े हुए संबंध सुधरे हैं। सब के प्रति मैत्री जागने लगी है।”



ग्रीस का मजदूर साधक जोर्ज कासिस, जिसने कि पहला शिविर डलहौजी में १९७४ में लिया था, लिखता है, “मेरे नशे-पते पूरी तरह छूट गए हैं और यह विपश्यना साधना के प्रभाव से ही हुआ है। मेरा शारीरिक स्वास्थ्य बहुत सुधरा है। मन शांत रहने लगा है, सहिष्णुता और समझ बढ़ी है। समता और मानसिक संतुलन भी।”



मद्रास का अध्यापक साधक सी. एम. परमानंदम् लिखता है, “विपश्यना साधना मैं नियमित करता हूँ। इससे मेरा स्वास्थ्य सुधरा है। मानसिक शांति बढ़ी है।”



आस्ट्रेलिया की कुमारी हेलेन बैच, जिसने पहला विपश्यना शिविर अगस्त-१९७४ में डलहौजी में लिया था, लिखती है, “अब जीवन में तनाव कम हो गया है। मानसिक स्तर पर शांति और समता बढ़ी है। लोगों से संबंध सुधरे हैं, क्योंकि संकीर्ण आत्म-केंद्रित रहना कम हुआ है। अब अपनी समस्याओं का समाधान करने में अधिक आत्मविश्वास, और स्थिरता आयी है। विश्वास, निर्भरता, शांति के साथ लोगों के प्रति जो भैरी भाव जागा है वह सचमुच बहुत अच्छा है। अब जीवन जीना अधिक सरल हो गया है। सामना करने का सामर्थ्य बढ़ गया है।”



फरवरी १९७४ में प्रथम साधना शिविर में सम्मिलित होकर अब तक कुल आठ शिविरों में भाग लेने वाली क्यूवेक, कनाडा की साधिका गेल इवान्स लिखती है, “अब मेरा सिरदर्द कम हो गया है। झुंझलाहट और गुस्सा कम हुआ है। व्यवहार जगत में सभी संबंधों और वस्तुओं के परिवर्तनशील स्वभाव की सच्चाई के प्रति सजगता बढ़ी है।”



कैनाडा की साधिका मारगरेट स्वेनिंगसन, जो पहली बार पिछले हैदराबाद के शिविर में सम्मिलित हुई, लिखती है, “शिविर के बाद मैं कैनाडा अपने घर लौट आयी। रास्ते में कुछ दिन के लिए इगतपुरी रुकी ताकि वहां आपसे पुनः मिलकर अलविदा कह सकूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट कर सकूँ। पर आप नहीं मिले। मेरे हृदय की तलस्पर्शी गहराइयों तक मैं झुकगुजार हूँ। आपने यह जो अनुपम उपहार दिया है। यह खूब जानती हूँ कि जहाँ तक धर्म के समझ का सवाल है अभी तक तो कांच की सतह को कुरेदने के समान ही है। परन्तु मेरा मन इस बात से बहुत प्रसन्न है और चिरकृतज्ञ है कि मैं धर्म के मार्ग पर इतने कदम भी चल सकी। विश्वास है कि मैं अब अधिक धर्ममय जीवन जी सकूंगी।

सौभाग्य से मैं ऐसे समय घर लौटी कि यहाँ श्री कोलमैन का विपश्यना-शिविर लगने वाला था। उस शिविर की व्यवस्था का भार वहन करके मन अत्यंत संतुष्ट प्रसन्न हुआ। मैंने देखा कैसे धर्म सर्वत्र सहायक सिद्ध होता है।”



इगतपुरी में स्वयं-शिविर

क्रमांक	दि.	२७-८-७८ से	७-९-७८ तक
२०	२१	७-९-७८ से	१८-९-७८
२१	२२	१८-९-७८ से	२८-९-७८
२२	२३	२८-९-७८ से	८-१०-७८
२३	२४	८-१०-७८ से	१८-१०-७८
२४	२५	२९-१०-७८ से	८-११-७८
२५	२६	८-११-७८ से	१८-११-७८

- नोट १) स्वयं-शिविर में केवल वे पुराने साधक ही सम्मिलित हो सकेंगे जो कि विद्यापीठ की अनुशासन-संहिता का आत्मविश्वास के साथ कड़ाई से पालन कर सकें।
- २) कोई साधक यदि पूरे शिविर में सम्मिलित न हो सके तो वह अपनी सुविधानुसार बीच में कम दिनों के लिए भी सम्मिलित हो सकता है।
- ३) प्रत्येक अवस्था में आवश्यक है कि व्यवस्थापक से अपना स्थान सुरक्षित रखने की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लें।
- ४) यथासंभव प्रत्येक शनिवार-रविवार को पूज्य गुरुजी ‘धम्मगिरि’ पर उपस्थित रहेंगे। अतः जिस साधक को कोई विशेष कठिनाई हो, उनसे मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकेंगे।
- ५) स्वयं-शिविर में अन्य सभी सुविधाएँ उपलब्ध रहेंगी।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक १५२ जयपुर (विपश्यना केंद्र) दि. २०-९-७८ से ३०-९-७८ तक (हिन्दी)

संपर्क : श्री श्याम सुन्दरजी मुंदडा, जी-१/ए, अशोक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर - ३० २००१ (राज.)

तार : डॉली, फोन नं. घर : ६३३२२ कार्यालय : ६५४१४.

शिविर क्रमांक १५३ इगतपुरी (वि. वि. वि.) दि. १८-१०-७८ से २९-१०-७८ तक (अंग्रेजी)

” १५४ ” ” ” दि. १८-११-७८ से २९-११-७८ तक (हिन्दी)

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३. (नासिक-महाराष्ट्र) फोन नं. ७६.

नोट :- १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी प्रवचन सुनने के लिए हिन्दी टेब की सुविधा उपलब्ध रहेगी।

३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

तार- प्रेम केबल, टेलीफोन नं. ४०३५७ / ४४५४७.

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कम्पनी लि.

१४/१५-एफ, कन्नोट प्लेस, नई दिल्ली-११०००१.

की मंगल कामनाओं सहित।

एक शुभेच्छुक

की मंगल कामनाओं सहित।

दोहे धरम के

धर्म नित्य नूतन सदा, धर्म न होवे जीर्ण।
धर्म शुद्ध व्यापक सदा, धर्म न हो संकीर्ण॥
बँधे जाति से वर्ण से, तो हो धर्म मलीन।
सम्प्रदाय से जब बँधे, होय धर्म-बल क्षीण॥
मंगल पथ है धर्म का, करे जगत कल्याण।
कदम कदम जो भी चले, पावे पद निर्वाण॥
शुद्ध धर्म करता नहीं, जात पाँत का भेद।
सबको ही निर्मल करे, होवे श्याम सफेद॥
राग जगे रोगी बने, द्वेष जगे दुख होय।
हो इस कुल, उस गोत्र का, फर्क पड़े ना कोय॥
गलत कदम रुकते रहें, सतत सजग जो होय।
निज मन का मालिक रहे, मन कलुषित ना होय॥

दूहा धरम रा

दवा बिचारी के करै? लेयां ही सुख होय।
धरम बापड़ो के करै? धारयां ही हित होय॥
हुयो अंधेसे दुझ मयी, दिवळै हन्दी लोय।
बातां ही बातां करूँ दियो न प्रजलित होय॥
लेतो देतो ही रयो, धरमां रो उपदेस।
चरचा ही चरचा करी, मिट्या न मन का क्लेस॥
तीस्यो ब्याकल तीस सं, करै बात पर बात।
तीस बुझासी नीर ही, नांय नीर की बात॥
कुदरत तो देखै नहीं, जात बरण कुल गोत।
राग रयां तो रैवसी, अन्तर दुखड़ा भोत॥
आ तो गंगा निरमली, हुवै मुक्त जो न्हाय।
धरम न कीं कै बाप को, जो धारै सो पाय॥

तयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक, मुद्रक एवं प्रकाशक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट,

बम्बई २३. टेलीफोन : २६८६७९ • मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१ •

पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रू. ४००/-, चौथाई पृष्ठ रू. २००/- • वार्षिक शुल्क रू. ५/-, आजीवन शुल्क रू. ५१/-

“विपश्यना”

पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :

तयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट

विपश्यना विश्व विद्यापीठ

धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.

(नासिक - महाराष्ट्र)

To